लगी। जिस भूमिमें सैंकड़ों मुनि, आचार्य धर्मोपदेष्टा विचरते थे, आवाल वृद्ध जैनधर्मके माननेवाले थे, आज वहां नाम मात्रको १२ लक्षकी संख्या रह गई है। उनमेंसे भी कालके चक्रमें फंसकर सैंकड़ों स्वर्गगामी होते जाते हैं। कई शताब्दियों पर्यन्त यवनोंने हमपर, हमारे धर्मपर, और हमारे धर्मोपदेष्टाओं-पर अत्याचार किये, परन्तु आज कल हमारे गौराङ्ग महाप्रभुके राज्यमें हमें अपने धर्मपर, अत्याचारके न होनेका सौभाग्य प्राप्त है। किन्तु शोकके साथ लिखना पड़ता है, कि ऐसे समयमें भी हमारे जैनी भ्राताओंको आपसके झगड़ोंसे ही फुरसत नहीं मिलती।

पाठक! यह सब तो ठीक है, परन्तु संसारचक्रका ऐसे ही परिवर्तन होता रहता है। कभी किसीकी बढती होती है, कभी कोई विजयलक्ष्मी प्राप्त करता है और कभी कोई अपने नामका डंका बजाता है। जातियां ऐसे ही कालानुसार बनती बिगड़ती रहती हैं। अब एक कवि के वचनानु-सार कि, "गई सो गई अब राख रहीको" गतकी चिन्ता न कर वर्तमानकी ओर हमें ध्यान देना चाहिए।

इस समयमें वीरप्रभु और अकलंक निकलंक जैसी शक्तियोंके उत्पन्न करनेकी आवश्यकता है। जब जब धर्मपर अत्याचार हुआ था तब तब कोई न कोई नवीन शक्ति अवश्य उत्पन्न हुई थी। अब भी किसी शक्तिका उत्पन्न होकर जिनवाणीका व जैनजातिका उद्धा-र होना कोई कठिन बात नहीं है। इस समय आवश्यकता इस बात-की है, कि शक्तियोंके उत्पन्न होनेका सामान हम उपस्थित करदें।

हमारे परम गुरुके बताए हुए सिद्धान्त और उनका दिखाया हुआ मार्ग इतना उत्तम और विचित्र है, कि यदि हम तदनुसार चलते रहें, तो धर्मविजय हमारी सदा दासी बनी रहे ; पराजय हमारे पास फटक कर न जावे । लक्ष्मी और सरस्वतीसे हमारा साथ छोड़ना न बन पड़े । मैं दावेके साथ कह सकता हूं कि जैनजातिके पतन होनेका कारण परम गुरुके बताये मार्गसे च्युत होना है । या यों कहिए कि जैनी अब वास्तविक जैनी नहीं रहे ।

जिस समय हम अपने पूर्वजोंके बताए पर्वोंकी ओर दृष्टिपात करते हैं, तो हमें उनमें भी उनकी दिव्यदृष्टिका साफ पता लगता है । मैं ऊपर लिख आया हूं कि वीरप्रभुके राज्यको विप्लव हुए सैंकड़ों वर्ष होगए । उनके अस्तित्वको उठे बीसों शताब्दियां हो गई । उन वर्षोंमें बड़े बड़े हेर फेर हो गए, किन्तु आजतक जैनीका बच्चा बच्चा उन वीरप्रभुके नामकी जपमाला जपता है और पर्यूषणका उत्सव मनाता है ।

आजतक कोई भी वर्ष ऐसा नहीं गया होगा जिसमें पर्यूषणपर्व किसी न किसी रूपमें न मनाए गए हों और जैनियोंके जातीय जीवनकी लड़ीमें पर्यूषणमणि प्रत्येक वर्ष नहीं पिरोई गई हो ।

आज कल सब जैनी अपने बच्चोंको उत्तम उत्तम वस्त्राभूषण पहरा कर जिनमन्दिरोंमें ले जाते हैं और वीरप्रभुके सच्चे ज्ञानके, सच्चे ध्यानके, सच्ची वीरताके और सच्चे त्यागके गुणानुवाद गाया करते हैं । जैन रमणियां मधुर मधुर गायन जलसे उस भवभय भञ्जन, दुष्टनिकन्दन, कर्मदलदलनकी गुणलतिकाका सेचन

कर आनन्दकुसुमको विकसित करती हैं।

पण्डितजन मन्दिरोंमें बैठ कर उस वीरप्रभुके दिये उपदेशोंका स्मरण करा कर सभामें उपस्थित जनसमाजको उत्तेजित करते हैं। वीरप्रभुके गुणोंका साक्षीकरण कराते हैं। पापप्रपञ्चोंसे वञ्चित हो धर्मपथपर चलनेकी अनुमति देते हैं। वीरप्रभुके बताए 'अहिंसा परमो धर्मः' के मार्गकी प्ररूपणा करते हैं। दानका माहात्म्य बताते हैं और प्रत्येक जैनी स्वशक्त्यनुसार दान भी देता है। सत्य है इन दिनोंमें कोई भी ऐसा जैनी नहीं होगा, जिसके मुंहसे एक बार यह शब्द नहीं निकल पड़ते हों "बोलो महावीर स्वामीकी जय! बोलो जैन धर्मकी जय!!"

आइये पाठक! हम आपसमें मिलकर विचार करें, कि वीरप्रभुकी पूजा करनेवाली और उसके बताए मार्गपर चलनेवाली जैन जातिकी ऐसी हीन दशा क्यों हो रही है। अटल सिद्धान्तोंके पीछे लड़नेवाले जैनियोंको दुःख और पराजयका सामना कैसे करना पड़ा? शक्तिशालीकी आराधना करते हुए भी हम शक्तिहीन कैसे हुए? आज वीरप्रभुकी जन्मभूमि ऊजड़सी क्यों हो रही है? जहां कभी दुष्काल नहीं पड़ता था, अब दुष्कालकी पीड़ासे जनसमाज क्यों व्याकुल हो रहा है? जिन वीरप्रभुके शासनमें महामारी दुष्काल कभी बाधित नहीं करते थे वे ही सम्प्रति क्यों धावा कर रहे हैं? क्यों आज कल ताऊन महाराज हमें सताए डालते हैं?

पाठक! दीर्घदृष्टिसे देखिए तो हमें इनका कारण यही विदित होता है, कि हम पर्व मनाते हुए भी नहीं मनाते हैं। सेवा करते

हुए भी निरादर करते हैं । अटल सिद्धान्तोंको जानते हुए भी टल जाते हैं । यदि हम वीरप्रभुकी सच्ची उपासना करना, उनकी आज्ञा पालना और सच्चे दिलसे सेवा करना सीख लें तो हमारे दुःख—कष्ट—क्षणभरमें पलायन कर जावें । हम जिनवाणी माताकी विजय पताका उड़ावें और सारे संसारमें " जैनधर्मकी जय " बोलनेकी योग्यता प्राप्त करें ।

आओ ! जैनवीरो, आओ ! हम तुम मिलकर जिनवाणी—माता-की आराधना करें । आत्मिक, मानसिक और शारीरिक शक्ति उपार्जन करें । जिस प्रकार हमारे पूर्वज अकलङ्क, निकलङ्क स्वामीने माताके हेतु प्राणोंतकका भोग दे उसकी विजयपताका फहराई हम भी उनके अनुगामी बनें । सच्चे स्वार्थत्यागी, ब्रह्मचारी, धर्मात्मा और मातृभक्त बनें ।

हम " पर्वदिन " " पर्वदिन " चिल्लाते हैं । किन्तु सैंकड़ों वर्षोंसे हम दूसरोंके अनुगामी बन असली पर्वका अर्थ भूल गए हैं । उसका महत्त्व हमारे हृदयमन्दिरसे पलायन कर गया है । नहीं तो पर्वका नाम सुनते ही प्राणीमात्रके हृदयमें लहरें उठने लगनी चाहिए थीं, किन्तु ऐसा नहीं होता ।

प्यारे युवको ! पर्वके महत्त्वको समझो । स्वार्थपरायणता और व्यक्ति गत सुखको तिलाञ्जली दे कर ब्रह्मचर्य व्रत धारण करो । जिनवाणीमाताकी विजयपताका उड़ा कर प्राणीमात्रको मोक्षका मार्ग बतलाओ तथा उसे दुष्टोंके अत्याचारसे बचाओ । इस पवित्र अवसरपर मैं मेरे युवक बन्धुओंसे दो चार बातें कहना चाहता हूं ।

जिस प्रकारसे हमारे पवित्र जैनधर्मकी अपेक्षा अन्यमतोंकी अधिक उन्नति दीख पड़ती है, इस ही प्रकार हमको लज्जाके साथ यह वात स्वीकार करनी पड़ती है, कि जैनधर्म प्रतिदिन अधोगतिमें जा रहा है। इसकी जातीय दशा भी वहुत विचारणीय हो रही है। वीरप्रभुके सुपुत्रो! आर्यवंशी अपने मस्तकपर कलङ्कका टीका चढ़ानेकी अपेक्षा मृत्युको अत्युत्तम समझते हैं। स्मरण रक्खो! वीरप्रभुका रक्त तुम्हारी नस नसमें, रशे रेशेमें और नाड़ी नाड़ीमें विद्यमान है। वीरप्रभुने इस पवित्र भारतभूमिको पवित्र की थी और इस ही भूमिमें उन्होंने जन्म लिया था। आज जहां तुम जाते हो वहीं जैनके नामसे तुम्हारी पहिचान होती है। जैनधर्म ही तुम्हारा एक अवलम्बन है। वीरप्रभु ही तुम्हारे सहायक हैं। उठो! कमर साहसकी कसकर मैदान—धर्मपथमें कूद पड़ो, फिर देखो तुम्हारी कैसी उन्नति होती है। मुझे विश्वास है, कि जो अधिक सोता है; उसहीकी जागृति भी सर्वोत्तम होती है। यह पवित्र जैनधर्म, जो सब मतोंसे पीछे पड़ा हुआ है, फिर एक बार उठकर सबका अग्रगामी बनेगा। प्यारे युवकबन्धुओ! इसको पूराकर दिखाना भी तुम्हारे ही हाथ है। शीघ्र शक्तिकी उपासना करो। अपने अंदर शक्तिका संचार करो। इस पर्यूषणपर्वमें ही जिनवाणीमाताके उद्धारका बीड़ा उठाओ। अपने धनहीन, धर्मशून्य और विद्या अनभिज्ञ भाइयोंके दुःखोंको दूर करो। जातिकी सेवा करना सीखो और स्वार्थका त्याग करो। प्राचीन जैनधर्मके अटल सिद्धान्तोंका प्रसार करो और जैनधर्मकी ध्वजापताका सर्वत्र फहरा दो।

युवको! पृथ्वीपर " अहिंसा परमो धर्मः " का झण्डा फहराने- की आवश्यकता है । इस कार्यका बोझा तुम्हारे ही कन्धोंपर है । आओ! आपसमें मिलकर पतितपावनी, मिथ्यात्वनाशिनी, जिन- वाणी माताके प्रचारका बीड़ा उठावें। प्राणीमात्रको सच्चा धर्म बता कर उन्हें दुष्टोंसे बचनेका उपाय बतावें। उनको कल्याणकारी मार्ग बता कर तदनुसार हम भी गमन कर मोक्षमें जावें।

मुमुक्षु—
विद्यार्थी वर्द्धमानजैनविद्यालय.
जयपुर

नोट—यह लेख गतवर्ष आया था, परन्तु उस समय पर्यूषण समाप्त हो जानेसे हम इसे नहीं छाप सके थे। लेखक इसके लिए क्षमा करें।

सम्पादक

हम क्यों गिरे?

जो देशके हितैषी हैं, जिन्हें अपने प्रिय भाइयोंसे प्रेम है, जो अपने देश बन्धुओंको हीन दशामें—शोचनीय अवस्थामें—देखकर दुखी होते हैं—उनकी पतित दशापर शोकाश्रु बहाते हैं, उन्हें अनेक कष्टोंसे घिरे हुए—विपत्तिसे आक्रान्त—भूखसे व्याकुल, वस्त्रा- भावसे सिकुड़ते हुए, निस्सहाय अवस्थामें पड़े हुए और पशुओंसे गये बीते देख कर जिनके हृदयमें दयाका सञ्चार होता है— करुणाका समुद्र उमड़ आता है—सहानुभूतिका स्रोत प्रवाहित होने लगता है, जो अपने स्वार्थको भूलकर—सुखोपभोगको लात मारकर

और विषयवासनाको त्यागकर एकान्तवासमें अपने देशकी, अपनी जातिकी हीन स्थितिपर विचार करते हैं तो उनके मनमें सबसे पहले यह प्रश्न उठता है कि हम क्यों गिरे ? हमारी ऐसी शोचनीय दशा क्यों हुई ? क्यों हम आज पशुओंसे भी हीन समझे जाने लगे?हमारी वह विद्या, जिसने एक वक्त सारे संसारको पल्लवित किया था, हमारे वे ऋषि महात्मा, जिन्होंने अपने गंभीर:विचारोंसे, अपने आदर्श चरित्रोंसे निस्स्वार्थ सेवाकर संसारमें अलौकिक सम्मान प्राप्त किया था, आज वे कहां हैं ? आज भारतमें अपनी जातिके लिए आत्मबलि देनेवाले अकलंकसे महामुनि, अर्जुन, भीष्मपितामह सरीखे वीर, युधिष्ठिरसे धर्मधुरीण, अमरचन्दजी सरीके परोपकार-के लिए फाँसीपर चढ़नेवाले, कितने हैं ? जिस उच्च देशका इस प्रकार अधःपतन होगया फिर उसके निवासी क्यों गिरे इस प्रश्नका उत्तर सहज ही ध्यानमें आ सकता है।

संसारके देशोंका इतिहास जाननेसे ज्ञान पड़ेगा कि उनके निवा-सियोंकी अवनति तब होती है जब उनके विचार संकुचित होकर उनमें उदारता नष्ट हो जाती है, अपने देशबन्धुओंसे प्रेम हटनेकर स्वार्थपरायणता आ जाती है; विरोधकी अग्नि धधक उठती है—उसमें सरलता, सौजन्यता, सुशीलता आदि पवित्र गुणोंकी आहुति देदी जाती है, प्रतिहिंसाका आधिपत्य हो जाता है; क्रोध, मान, माया, लोभादि मनोविकारोंसे उनका आत्मा मलिन हो जाता है, देशानुराग उनमें नहीं रहता है और मनुष्य अपने कर्तव्य पथसे च्युत हो जाता है। रोम, ग्रीस आदि देश इस बातके ज्वलन्त उदा-

हरण हैं कि जब उनके वासियोंमें उक्त अविचारोंका: प्रचार हुआ तब वे पतित हुए, उनका देश नष्ट हुआ। और देशोंको क्यों भारत ही को देखिए न? उसकी अवनति भी तो पारस्परिक वैर विरोध, संकीर्णता, प्रतिहिंसा आदि कारणोंसे हुई है।

यही सजला सफला पवित्र भारतभूमि कभी सत्यताके शिखरपर विराजमान थी, सब तरहकी विद्याको इसके निवासी जानते थे, कला कौशलका यहां अच्छा प्रचार था, लोग धन धान्यादिसे पूर्ण सुखी थे, बड़े बड़े उन्नत विचार यहांके ऋषि महात्माओंके मस्तकमेंसे प्रादुर्भूत हुए थे, थोड़ेमें यों कह लीजिए कि सारा देश शान्तिमय था, परन्तु सच है "विनाशकाले विपरीत बुद्धिः" हुआ करती है, ठीक यह उक्ति भारतपर चारितार्थ हुई, शान्तिमय देशमें विरोधकी जाज्वल्यमान आग धधकी, कुल—कलंक दुर्योधनने स्वार्थके वश होकर अपने प्रिय बन्धुओंसे विरोध करना शुरू किया। उसका हृदय इतना कलंकित होगया कि उसने उन्हें रहनेके लिए जमीनका जरासा टुकड़ा भी देना पाप समझा। भरी सभामें अपनी भौजाई सती, साध्वी, द्रौपदीकी इज्जत लेना उसने बुरा न समझा। उसे बहुत समझाया, देशकी भावी दशाका उसे ज्ञान कराया गया तब भी उसने एक न मानी। फिर क्या था—भाई भाईमें घोर—पृथ्वीको कँपानेवाला—घमसान युद्ध हुआ ही। इस युद्धमें देशके गौरव स्वरूप अनेक देशहितैषी सच्चे वीरोंका अन्त हुआ। उन्नतिशील भारतकी अधोगतिका यहींसे सूत्रपात हुआ। दिनपर दिन फूटका साम्राज्य बढ़ता गया। उसकी इस हालतमें विदेशियोंकी

अच्छी बन आई। उन्होंने चारों ओरसे उसपर आक्रमण करना शुरू कर दिये। उसके वासियोंपर घोरसे घोर अत्याचार किए गये, खूनकी नदियां बहाई गई, पवित्र देवमान्दिर तोड़ डाले गये, पवित्र शास्त्र भस्मसात् कर दिये गये और लाखों करोड़ों धर्मभ्रष्ट किये गये, पर भारतवासी इन बातोंका कुछ प्रतिकार न कर सके। करे कहांसे ? उनमें फूटका तो एकाधिपत्य राज्य हो रहा था न ? इसीके तो ये उदाहरण हैं जो जयचन्दने अपने देश-बन्धु पृथ्वीराजका साथ न देकर विदेशी दुश्मनोंका साथ दिया और भारतका सर्वनाश करवाया। तबसे भारत अभीतक गिरता ही चला आता है। जिनका कर्तव्य एक दूसरेको सहायता देना था, एककी विपत्तिमें दूसरेको मदद पहुंचाना था, वे आपसमें एकके खूनके एक प्यासे हुए। यह क्यों ? कहना पड़ेगा कि इसका कारण स्वार्थ है। स्वार्थके सिवा कोई ऐसा कारण नहीं दीख पड़ता जो देशकी ऐसी दुर्गति करवाता। स्वार्थ, तेरे समान प्रचण्डकर्मा संसारमें कोई नहीं है। तू ही माता पुत्र, पिता पुत्र, भाई भाई, स्वामी सेवक, गुरु शिष्य आदिमें विरोध—भयंकर दुश्मनी—करवा देता है। यह तेरी ही कृपाकटाक्षका फल है जो मनुष्य अपने प्रिय जनोंकी हत्यातक कर देता है। वह यह अच्छी तरह जानता रहता है कि जो काम मैं कर रहा हूं वह मेरी शानके विरुद्ध है—अनुचित है। वह यह भी जानता है कि मुझे कालकी कराल डाढ़का चबेना बनना पड़ेगा—मुझे अपने किये बुरे कर्मोंका फल भी भोगना पड़ेगा—पर तब भी स्वार्थ उससे सब कुछ करवा डालता है। वह उसकी मोहनीधूलसे अन्धा बनकर अपना

और परायेका नाश कर लेता है। प्रेम क्या चीज है? परोपकार किसे कहते हैं? ये भाव कभी उसके हृदयमें उत्पन्न नहीं होते।

स्वार्थसे आत्माके पतित होनेकी सीमा नहीं है। वह जितना कुछ कर पाये थोड़ा है। हमारे स्वार्थके कारण भारतवर्ष यद्यपि बहुत कुछ गिर चुका है, पराधीनताकी शृंखलासे वह जकड़ा हुआ है पर जब हम उसके प्राचीन वैभवपर दृष्टि दौड़ाते हैं तो हमारे हृदयमें एक अपूर्व उत्साहका प्रादुर्भाव होता है। इसे संसार अब भी स्वीकार करेगा कि जब अन्य जातियां, जो कि आज गौरवान्वित समझी जाती हैं, बिलकुल अन्धेरेमें थीं, ज्ञानका विकाश उनपर न पड़ा था, वे पाशविक अवस्थामें थी, उस समय भारत वर्ष सभ्यताके सर्वोच्च शिखरपर था। संसारका आदर्श पथप्रदर्शक था। सारा संसार ज्ञान प्राप्तिके लिए उसके द्वारका भिखारी था, बहुतसे देश और जातियोंने इससे ज्ञान प्राप्तकर अपनेको उच्च दशापर पहुंचाया था, पर दुःखका विषय है कि आज उसी संसारके मुकुटमणि भारतकी हालत हमारे आपसी वैर विरोध, अशिक्षा, आदिसे बहुत बिगड़ गई है।

प्यारे देश! हमारी अकर्मण्यतासे तू सब प्रकार अधोगतिको पहुँच चुका। हर वक्त गद्दी तकियोंके सहारे पड़े रहनेवाले विलासिताके गुलामोंको यह खबरतक नहीं कि तेरी प्राणप्यारी सन्तानपर आज कैसी गुजर रही है, वह किस निकृष्ट दशामें अपने जीवनको व्यतीत कर रही है। उसके पास रहनेको घर नहीं, पहरनेको वस्त्रका टुकड़ा नहीं और खानेको अन्न नहीं। जिसकी यह हालत है भला वह क्या अपनी उन्नति कर सकती है? जिससे

पैंड भर चला नहीं जाता, जिसके जीवनमें भी सन्देह है, वह कैसे दूसरोंपर विजय पा सकती है? देशका दुर्भाग्य है जो उसकी सन्तानकी यह पतित दशा हुई। ये सब हमारी कर्तव्य विमुखता, पारस्परिक शत्रुता और स्वार्थान्धताके बीज हैं। हममें ये वातें न समाती तो कभी यह संभव नहीं था कि आज हमें अपने प्रिय देशकी दशापर आंसू बहाना पड़ते।

अस्तु। जो कुछ भी हुआ, पर अब हमारे सामने प्रश्न यह उपस्थित है कि हम गिरे तो खूब ही, पर अब हमारा फिर उत्थान कैसे हो? कैसे देशकी दशाका सुधार हो? कैसे वह अपने खोये हुए वैभवको फिर प्राप्त कर सके? हमें ये सब बातें अच्छी तरह हल करके देशकी उन्नतिके पथको सरल बनाना चाहिए।

सेवक—सुखसम्पत्तिराय भण्डारी

विष-विवाह।

(गताङ्कसे आगे)

बुढ़ियाको मूर्छित देखकर कन्हैयाने उसे देखते रहनेके लिए वहां अपना नौकर रख दिया और आप निर्भय केसरके शयनागारमें जा पहुँचा। उसकी गंभीर और भयंकर मूर्ति देखकर सबके पहले रतनचन्द मारे भयके केसरके पलंगके नीचे जा छुपा। उसे छुपते हुए किसीने न देख पाया। कन्हैयाकी इस प्रकार निडरताने केसरको भी कँपा दिया। उसका मुहँ फीका पड़ गया।

किसनचन्दने कुछ साहस करके कहा—क्योंरे ! तू कौन है ? और इस तरह दूसरोंके घरमें क्यों घुसा आया ?

कन्हैयाने हाथमें पिस्तोल लेकर कहा—तू मुझे नहीं पहचानता कि मैं तेरा काल हूं। कलसे केसर मेरी हो चुकी। तू इसी समय यहांसे चलता बन। नहीं तो यह देख तेरा काम अभी तमाम किये देता हूं।

भयसे कांपते कांपते किसनचन्द बोला—केसर तेरी ? इसे तो मैंने खिला पिलाकर इतने दिनतक पाली है। दो दिनसे मैं यहां न आ सका, क्या इतनेमें ही यह तेरी हो गई ? यह बात सत्य है ?

कन्हैया बोला—हां, सर्वथा सत्य है। गई रातसे सौ रुपया रोज देनेका इकरार कर मैंने इसे अपने आधीन कर लिया है। केसर चुपचाप नीचा मुख किये बैठी रही।

क्रोध और दुःखसे चिन्तातुर होकर किसनचन्दने कहा—भूल ! भूल ! तूने अपने जीवनमें यह बड़ी भारी भूल की। मेरी हालत देखकर तुझे शिक्षा लेनी चाहिए। धर्मभ्रष्ट स्त्रीकी धनलालसा अपरिमाण होती है। उसकी चित्तवृत्ति विषमयी काली नागिनकी तरह होती है। पापिनी केसर ! अब मैं अच्छी तरह समझा। बोल ! बोल !! तू किस साहस और किस उद्देश्यसे मेरी धन-सम्पत्ति अपने नाम लिखवाना चाहती थी ?

महाशय ! आपने इस समय आकर मेरा बड़ा उपकार किया। यदि आप थोड़ी ही देर बाद आते तो बड़े बड़े कष्टसे कमाया हुआ धन मैं इसके हाथ सौंपकर पथका भिखारी हो जाता।

मुझे मुट्ठीभर दाने तकके लिए द्वार द्वार ठोकरें खानी पड़तीं।

कन्हैयाने कहा—तुम सरीखे अधम अपनी विवाहित स्त्रीको छोड़कर इन कुलटा, कुलाङ्गारिणीके टुकड़े तोड़नेवालोंकी ऐसी दशा हो तो इसमें आश्चर्य क्या ?

किसनचन्दने कहा—और आप भी याद रखिए कि विश्वास घातिनी केसर आपसे कहीं अधिक धनी युवकको पाकर मेरी ही तरह आपको भी इसी दशामें ला पहुँचायगी।

तुम सरीखे कुत्तोंकी तरह दश जनोंकी झूंठी, धर्म भ्रष्ट कुलटाकी रूपराशिपर लालायित होकर मैं इसके मकानपर नहीं आया हूं। मैं चाहता हूं हत्या ! हत्या !! भयंकर हत्या !!! रक्त ! रक्त !! तेरे और केसरके खूनमें आज इन हाथोंको धोऊंगा। विश्वास घातिनी केसर ! तूने मेरे साथ बात चीत करके किस साहससे इस समय पर पुरुषको अपने घरमें स्थान दिया है ? तेरे इस विश्वासघातका तुझे उचित फल अभी देता हूं। यह कहकर कन्हैयाने पिस्तोल हाथमें उठाकर उसे केसरकी ओर किया।

भयसे काँपते कांपते केसर बड़ी मुश्किलसे हाथ जोड़कर बोली—जमीदार महाशय ! क्षमा कीजिए, क्षमा कीजिए ! मुझे प्राणोंसे न मारिये।

कन्हैया बोला—क्षमा ? अब क्षमा कैसी ? नहीं, मुझसे ऐसा न हो सकेगा। दुराचारिणी ! तेरी धूर्तता मैं अच्छी तरह जान चुका।

इसके बाद कन्हैयानें किसनचन्दको लक्ष करके कहा—लम्पट चूड़ामणि ! आज तेरी भी कुशल नहीं है। मैं जमीनदार नहीं;

किन्तु धनका लोभी डकैतोंका मालिक । यह कहकर कन्हैयाने अपना असली वेष बना लिया।

कन्हैयाको नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रसे सुसज्जित देखकर मारे आश्चर्यसे किसनचन्दकी आंखें फटीकी फटी रह गईं । भयसे उसका शरीर थर थर कांपने लगा। वह एकदम चिल्लाकर बोला— रतनचन्द ! रतनचन्द !! तुम कहां चले गये ? अरे, इधर आ कर एक बार देखो तो तुम्हारा प्रिय मित्र किसनचन्द किस बलामें फँसा हुआ है ।

रतनचन्द उसका चिल्लाना सुनकर कुछ भी न बोला और चुपचाप पलंगके नीचे ही पड़ा रहा। किसनचन्दकी इस आपदशापर उसने आंख उठाकर भी न देखा। अन्तमें किसनचन्द कन्हैयाके पावोंमें गिर पड़ा और हाथ जोड़कर बोला—तुम मुझे न मारो । मेरे पास तीस हजारका चेक है मैं उसे अपनी ख़ुशीसे तुम्हारे सुपुर्द किये देता हूं ।

यह सुनकर कन्हैयाने एक तेज छुरी निकाली और उसे किसन-चन्दको दिखाकर कहा कि—इसी समय दीजिए। नहीं तो इसी समय इसे तेरी छातीमें भोंके देता हूं।

निमेषमात्रमें दश दश हजारके तीन चेक कन्हैयाके सामने रखकर किसनचन्द बोला कि—तुम्हारा नाम क्या ?

कन्हैयानें हँसकर कहा—श्रीमती रंभा देवी. आश्चर्यमें आकर किसनचन्दने कहा—श्रीमती रंभा देवी ? वह आपकी कौन ?

कन्हैयाने कहा—वह कोई भी हो, तुझे इससे मतलब ? पहले

मेरा कहना पूरा कर, पीछे जो तुझे पूछना हो पूछना।

कन्हैयाके कहनेका कुछ उत्तर न देकर किसनचन्दने नीचा मुखकर वे तीनों चेक रंभाके नामपर कर दिये। कन्हैयाने उन्हें अपने हस्तगत करके कहा—महाशय! यह रंभा और कोई नहीं; किन्तु तुम्हारी विवाहिता द्वितीय पत्नी है।

किसनचन्दने आश्चर्यमें आकर कहा—क्यों तुम मुझे कपट वेषमें ठगते हो? क्या धनलोभी डाकुओंके हृदयमें इतनी उदारता, इतनी महानुभावता कभी देखी गई? मुझे विश्वास है कि रंभाका कुछ तुमसे आत्मीय सम्बन्ध है।

कन्हैया बोला—उससे मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं है। तुम मुझे जानते होगे। मैं वही देवपुरका रहनेवाला कन्हैया डाकू हूं।

किसनचन्द उसे सिरसे पाँव तक अच्छी तरह देखकर बोला—देवपुरका कन्हैया डाकू! उसे तो बहुत वर्षोंसे देश निकाला होगया था।

हँसते हँसते कन्हैयाने कहा—कन्हैयाको गिरफ्तार करके देशनिकाला देदेना यह जरा टेढ़ी खीर है। अस्तु। इससे कुछ मतलब नहीं। रंभा मेरे प्रिय मित्रकी पुत्री है! इसलिए मैं उसे प्यार करता हूं। वह वैधव्य दुःखकी यंत्रणा न भोगे अतएव मैं तुम्हें क्षमा करता हूं। "तुम्हें क्षमा करता हूं। यह सुनकर केसर भी कन्हैयाके पावोंपर गिरकर बोली—डाकू सर्दार! मैं भी अपने इन सब भूषणोंको रंभाके लिए प्रदान करती हूं। कृपा करके मुझे भी क्षमा कीजिए।

कन्हैयाने बड़े गर्वके साथ कहा—सती, साध्वी पुण्यवती रंभा

तुझसी कुल्टा, कुल कलंकिनीके भूषणोंकी चाह करेगी? तुझे कहते हुए शर्म भी नहीं आती। केसर! तेरा रूप लावण्य संसारके लोगोंके मनको मोहित करनेवाला है। तेरे जीवित रहनेपर न जाने कितनी रंभा सरीखी सती—साध्वी—महिला पतिधनसे दरिद्र होकर पथ पथकी भिखारिणी होगी। इसलिए तुझे क्षमा करना मानो संसारको पापपंकमें फँसाना है। तेरी तो मृत्यु ही अच्छी है। परन्तु मैं अपने हाथोंसे तुझे मारना नहीं चाहता। यह पिस्तोल देता हूं, यदि तुझे पापोंसे अपना पीछा छुड़ाना है तो आत्महत्या करके निश्चिन्त हो जा। यह कह कर कन्हैया पिस्तोल वहीं रखकर चल दिया।

कन्हैयाके चले जानेपर किसनचन्द भी जानेके लिए उठा और केसरसे बोला—केसर! मैं जाता हूं, यदि और कोई जमीदार तुझे मिले तो अब उसके साथ आनन्द भोग करना।

केसर बोली—कहां जाते हैं? मेरा सब अपराध भूल जाइए—क्षमा कीजिए—मैं अब कभी ऐसा कुकर्म न करूंगी। मुझे छोड़कर न जाइए। अपने संग रखिए। मेरी बात सुनिए, मैं कभी तुम्हारा संग न छोडूंगी।

किसनचन्दने गर्जकर कहा—यदि तेरी ऐसी इच्छा है तो ले—इसके बाद पिस्तोल हाथमें लेकर केसरपर उसने गोली दागदी और स्वयं भी अपनी छातीमें गोली मारली। आंखोंके देखते देखते दोनोंकी समुन्नत लाशें जमीनपर धड़ामसे गिर पड़ीं। सारे घरको रक्तमय करके उनके प्राण पखेरु देह पींजरेसे उड़ गये। घरको अस्वामिक देखकर रतनचन्द पलंगके नीचेसे निकला और पिस्तोल हाथमें लेकर केसरके शरीरपरसे भूषण उतारने लगा।

कन्हैया जब चला गया तब बुढ़ियाको भी छोड़ता गया । पर जबतक वह उसकी आंखोंकी आड़में न हुआ तबतक वह वहींपर खड़ी रही । घरके भीतर न जा सकी । जिस समय वह बन्दूककी बार बार आवाज सुनकर घरके भीतर गई और वहां जाकर जब उसने वह हत्याकाण्ड और रतनचन्दका पैशाचिक कार्य देखा तब उसकी छाती दहल गई । वह एक साथ चिल्ला उठी। हाय ! खून, मेरी लड़कीका खून कर डाला, यह चिल्लाती चिल्लाती वह बाहर आगई और खूब जोर जोरसे रोने लगी । उसका भयानक रोना सुनकर रतनचन्दने केसरके भूषण आदि तो अपनी जेबमें रक्खे और पिस्तोलसे बुढ़ियाको अधमरी करके वह भाग निकला । भागते भागते उसने देखा कि चार पांच जने मेरे पीछे पीछे दौड़े आ रहे हैं । वह आगेकी और न जाकर केसरके मकानके पीछे बहती हुई गंगाके अगाध जलमें जा कूदा । उसके कूदनेकी आवाज सुनकर एक मनुष्य भी उसके पीछे ही कूद पड़ा और बाकीके मनुष्य बुढ़ियाकी खबर लेनेको पहुंचे ।

---

(६)

मात्सर्य ।

नदीके गंभीर जलमें बहुत कुछ ढूंढनेपर भी रतनचन्दका कुछ पता न लगा तब वह मनुष्य जलसे निकल कर अपने साथियोंसे मिला । सब मिलकर घटना स्थलपर पंहुंचे । भीषण हत्याकाण्ड देखकर सबकी छाती दहल गई । अब यह चर्चा चली कि हत्या

किसने की। अड़ौसी पड़ौसीपर सबका सन्देह बढ़ने लगा। कारण पड़ौसियोंमें ऐसा कोई न था जो कुछ प्रतिष्ठित हो।

रात्रि पूर्ण होनेहीको है। वायसगण अपने अपने घोसलेको छोड़कर इधर उधर मधुर मधुर कण्ठसे 'का' 'का' शब्दके द्वारा दिङ्मण्डलको प्रतिध्वनित करने लगे। सूर्यकिरणें म्लान न हों इसलिए निशानाथ अपनी निर्मल ज्योत्स्नाको लेकर पश्चिमाचल-पर जा विराजे।

इतनेमें यह संवाद सुनकर पुलिस भी वहां आ धमकी। लोगोंने हत्या करनेवालेका पता दिया कि वह इधरसे भागकर गया था। हम लोग उसे पकड़नेको दौड़े थे, परन्तु वह हाथ न आया और जल्दीसे पहुंच कर नदीमें जा कूदा। हमने उसे बहुत ढूंढा भी पर उसका पता न चला। पहले इसपर पुलिसको विश्वास नहीं हुआ। वह उन्हें ही इसका दोषी बतलाने लगी। पर जब रतन-चन्दके चरितका हाल उन्होंने पुलिससे कहा तब कुछ उसे विश्वास आया, वह उसी वक्त नदीपर गई। नदीका जल शान्त था। ध्यानसे देखनेपर उसे तैरता हुआ मनुष्यके सा आकार दिखाई पड़ा। उसके बाहर निकालनेसे पुलिसका सब भ्रम दूर होगया। वास्तवमें वह रतनचन्द ही था, उसके पास वे सब भूषण भी निकले जिन्हें वह चुरा कर लाया था। उसका चेहरा देखनेसे मालूम पड़ता था कि उसके प्राण बड़ी कठिनतासे निकले हैं। सच:तो यह है कि उसे पापका उप-युक्त प्रायश्चित्त मिल गया। हम अपनेको सुचतुर समझकर दूसरे-के पास अपनी कितनी ही चालकी क्यों न बतलावें—क्यों न दूसरोंको

ठगकर अपनेको निर्दोष सिद्ध करें, पर पाप कभी छुपा नहीं रह सकता। उसका उपयुक्त प्रायश्चित्त हमें भोगना ही पड़ेगा।

कन्हैयाके द्वारा तीस हजार रुपयोंके चेक पाकर नेमिचन्दको बहुत आनन्द हुआ था, पर जब उसने किसनचन्दकी मृत्युका भयकर हाल सुना तो वह सब उसका आनन्द उसके उमड़े हुए शोक समुद्रकी तरङ्गोके मारे टकराकर छिन्न भिन्न होगया। और हमारी रंभाको भी विषविवाहके विषमय फलसे असमयमें वैधव्यका कठिन दुःख सहनेको तैयार होना पड़ा। अब उसके मुखचन्द्रकी वह शोभा, वह कान्ति, वह प्रसन्नता नहीं रही। न अब वह अच्छे वस्त्र पहनती है और न भूषणोंपर ध्यान देती है, किन्तु बड़ी शान्तिसे अपना जीवन बिताती है। सदा परमात्माका ध्यान, पूजन, स्तवन किया करती है, स्वाध्याय करती है। कहनेका अभिप्राय यह कि उसका जीवन बड़ा शान्तिसे बीतता है। विधवाओंका कैसा आचरण होना चाहिए, उसकी वह आदर्श महिला है।

कन्हैया डाकू भी रंभाकी इस महानुभावतापर मुग्ध हो अपने जीवनके प्रवाहको फिरा कर उसे सुपथकी और ले गया। डाका डालना छोड़कर उसे पवित्र—पुण्यमय—बनाने लगा। शान्तिसे सब जगह शान्ति होती है, ऋषियोंका यह कथन अक्षर अक्षर सत्य है, नहीं तो कहां तो डाकूका भयंकर और नित्य मारकाटमय जीवन और कहां यह शान्ति सुखमय उसका हृदय?

रंभाकी भुवनमोहिनी ज्योतिर्मयी रूपप्रभामें गांवके आबाल-वृद्ध, युवा, पुरुष, स्त्री, सभी अपूर्व श्रद्धा और भक्ति करते हैं। वह

भी उत्साह और भक्तिसे जीवनके अवशिष्ट भागको परमात्माके ध्यान; पूजनमें विताती है, सबको प्रेमकी निगाहसे देखती है, धार्मिक जीवन बनानेका मार्ग बतलाती है। वह सच्ची तपस्विनी है। हमारी जातिकी विधवा महिलाओंको रंभाका पवित्र पुण्यमय जीवन अपना आदर्श बनाना चाहिए, विना इसके वे कभी सुख लाभ नहीं कर सकेंगी। *

पर्यूषणपर्व समीप है।

देखते देखते वर्ष भर बीत गया। पर्यूषणपर्व फिर आ गया। गत वर्ष हमने क्या क्या धार्मिक काम किया था और आगामी वर्ष हमें किस रीतिसे विताकर अपने अभ्यासको बढ़ाना चाहिए, पर्यूषणके बाद शायद ही किसीने इसपर विचार किया हो। कारण—हमारा धर्म सेवन करना—धार्मिक कार्य करना—ये सब बातें जैसी परम्परासे चली आती हैं उसी रिवाजको हम भी किसी तरह पूरा कर देते हैं। शास्त्रोंमें यह अवश्य लिखा है कि जितनी धार्मिक बातें हैं वे आत्म—कल्याण और शान्तिलाभके लिए हैं और इसे हम जानते भी हैं। पर फिर भी हम अपनी प्रवृत्तिको उस ओर नहीं झुकाते। क्योंकि सच पूछो तो हमें उनसे सच्चा प्रेम नहीं है। जिसे अपने भलेकी इच्छा होती है, जो धार्मिक कामोंको रुचि—श्रद्धा—भक्तिके साथ करता है, वह सदा अपने आत्माको पवित्र

* श्रीयुत बाबू बंकुविहारीधरके "विषविवाह" नामक बंगलाके एक सामाजिक उपन्यासका परिवर्तित अनुवाद।

विचार और पवित्र क्रियाओंसे पवित्र करनेका प्रयत्न करता रहता है। हममें वह वात नहीं है। हम सदा तो क्या किन्तु पवित्र पर्वदिनोंमें भी ऐसा नहीं कर पाते। आत्मा जव देखो तव मलिन, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष मोह, ईर्षा, मात्सर्य, स्वार्थपरायणता आदि अस्वभाविक दुर्गुणोंका केन्द्र वना रहता है। ऐसी हालतमें हम क्या धर्म साधन, क्या आत्मकल्याण और क्या शान्तिलाभ कर सकते हैं? वे नररत्न और ही हैं जिन्हें अपने जीवनके पवित्र वनानेकी धुन लगी रहती है।

पर्यूषणपर्व: वहुत पास है—इन शव्दोंके द्वारा हम अन्य लोगोंको अपना वड़ा धार्मिकपन वतलाते हैं। मानो अव हम धर्मके अवतार वन जायँगे, पुण्यकी जीती जागती मूर्त्ति हो जायँगे, पापका लेश भी हमारे पास नहीं फटकने पावेगा, हम सव सांसारिक प्रपंच—मायाजालसे—सर्वथा निर्मुक्त हो जायँगे, जीवन पवित्रताका आदर्श वन जायगा, शान्ति मिल जायगी और हमारे शरीरको जिधर देखिए उधर ही उसके रोम रोमसे धर्मकी वर्षा होने लगेगी, पर वास्तवमें हमारी हालत उन दिनोंमें कैसी रहती है इसे भगवान या हमारा आत्मा जाने? हमारे इस कृत्रिम धार्मिक भावको देखकर जन साधारण तो यही समझेंगे कि सचमुच पर्यूषणपर्वमें ये लोग वड़े धर्मात्मा, सीधे, साधे, अकपट हो जाते हैं। पर हमारे भाव उस समय किस श्रेणि तक पहुँचते हैं यह भी जरा देखिए तो—वैसे चाहे हमें कभी लड़ने झगड़नेका मौका न भी मिले पर इन दिनोंमें तो वर्ष भरके झगड़े टण्टे अवश्य ही उद्दीप्त होते हैं, कषायें

प्रचण्ड अग्निकी तरह धधकने लगती हैं, नारकियोंकी तरह गत वर्षके वैर विरोधको याद कर करके लड़ते हैं, छोटी छोटी बातोंके लिए तूफान मचा कर झगड़ेका मैदान साफ सुथरा करते हैं, वात्सल्य-प्रेम—किसे कहते हैं यह जानते ही नहीं, दीन, दुखी अनाथ जातीय भाइयोंके प्रति अपना कर्तव्य पूरा नहीं करते—दान धर्मके दिनोंमें भी किसीकी सहायता नहीं करते, कुविचार—कुसंस्कारोंसे—हृदयको और भी मलिन कर पुण्यकर्मकी ओरसे खींचकर उसे पापकर्मकी ओर लगाते हैं, बारह महीनोंमें जिन विषय वासनाओंने चाहे चित्तमें कभी स्थान न भी पाया हो, पर पर्यूषणमें तो अवश्य उनकी तृप्ति होनी ही चाहिए—इन्द्रियोंको यत्परो नास्ति आराम—सन्तोष—मिलना ही उचित है, इन दिनोंमें बनना तो चाहते हैं हम संयमी, जितेन्द्री, अलोलुपी, जिससे कि हमारी रागवृत्ति न हो, हम विषय वासना कमकर इन्द्रियोंका दमन कर सकें—इन पवित्र दिनोंको अकषाय और शान्तिके साथ बिता सकें—पर वास्तवमें ऐसा करते नहीं। तब करते हैं क्या ? रागवृद्धि; विषयवृद्धि ! खूब अच्छा अच्छा खाते हैं, अच्छा अच्छा पहनते हैं, बड़े चावसे ललनाओंकी रूप राशिका अवलोकन करते हैं—ध्यान करते हैं—जिनसे मानसिक विकार और भी अधिक बढ़कर आत्माको पतित कर डालते हैं। पर्यूषण था तो शान्तिके लिए पर हो जाती है प्रत्युत अशान्ति। हम कहांतक अपने पतित विचारोंके लिए लिखें। हमारे जितने भी काम हों वे फिर कभी भी हों, होने चाहिए पवित्रताके साथ—उच्च विचार और उच्च हृदयके साथ। अस्तु। इतना नहीं तो पर्यूषणपर्वमें तो

हम अपनी विषय वासनाको कम करके आत्माको पवित्र बनावें । पर खेद है कि हमसे इतना भी न हो पाता । जितने क्रोध, मान, मायाके व्यवहार हैं, उन्हें हम इन दिनोंमें और बहुतायतसे करने लगते हैं । हमारे लिए यह बड़ी लज्जाकी बात है । पर्यूषण बड़ा पवित्र पर्व है, आत्माको उन्नत और उदार बनानेका सच्चा साधन है । हम अपनी, अपनी जातिकी, अपने धर्मकी और देशकी उन्नतिके लिए इन दिनोंमें बहुत कुछ प्रयत्न कर सकते हैं । जैसे ये पवित्र दिन हैं, वैसे ही हमें पवित्र और परोपकारके काम भी करने चाहिएँ । जातिमें विद्याप्रचार करो, उसके लिए विद्यालय, आश्रम आदि संस्थाएं खुलवाओ, जो हैं उन्हें सहायता दो, जाति या देशके दीन, दुखी, अनाथ, विधवा आदि आश्रय हीन भाइयोंसे प्रेम करो, उनके दुःख दूर करो, उनकी जरूरतें पूरी करो, जातिमें एकताका प्रचार करो, परस्परमें प्रेमकी सीमाको बढ़ाओ, सबको अपने समान समझो, कभी किसीको कष्ट न पहुँचाओ, किसीकी निन्दा न करो, बुरे वचनों-से परमात्माका नामोच्चारण करनेवाले मुहँको गन्दा न बनाओ, धार्मिक कामोंमें जहांतक बन पड़े सहायता दो, दान दो, जैन धर्मकी प्रभावना करो, उसके प्रचारके लिए प्रयत्न करो, क्षमा धारण करो, क्रोध, मान, माया, लोभ राग, द्वेष, ईर्षा आदि दुर्गुणोंको पास न आने दो, ब्रह्मचर्य धारण करो, आत्माको शान्ति प्राप्त करानेके लिए शास्त्रोंका स्वाध्याय करो, जप तप, संयम, स्वीकार करो, विषय-वासनाको घटाओ, आत्मकल्याण करो, परोपकारके लिए तन, मन, धनसे जितनी कुछ सहायता दे सकते हो दो । सार यह कि

आत्माकी जिस तरह उन्नति हो वह काम करो। पर्यूषण आत्महितके लिए हैं न कि उसे उल्टा गिरानेके लिए। संसार सुख चाहता है, तुम-भी सुख चाहते हो, फिर उसकी प्राप्तिके लिए सच्चा उपाय क्यों नहीं करते? सब विकल्प जालोंको छोड़कर अधिक नहीं ते पर्यूषणपर्वमें तो शान्ति लाभ करो। यही पर्यूषणका कर्तव्य और मनुष्य जीवनके सफल करनेका साधन है। आशा है—समीप आनेवाले पर्यूषणके लिए अभीसे तैयारियां करके उसे बड़ी शान्ति और सुखसे व्यतीत करनेका यत्न करोगे।

एक विद्वानके संकुचित विचार।

जब मनुष्यके हृदयमें पक्षपातका भूत प्रवेश करता है और उसे अन्धा बना देता है तब वह अपने, परायेका भेद भाव भूल कर जिसे जो कुछ दिलमें आता है सुनाने लगता है। वह न उस समय सभ्यताकी परवा रखता है और न जातीय प्रेमकी। ये बातें चाहे कितने महत्वकी हों, पर उसकी आंखोंके सामने तो तुच्छसी दीख पड़ती है। पक्षपातसे मनुष्यकी बुद्धिमें अत्यन्त संकीर्णता आ जाती है। वह दूसरोंको अपमानित करनेकी कोशिश करता है। जैसे बन सके अपने प्रतिपक्षीको जन साधारणकी दृष्टिसे नीचा गिरानेमें, उसकी बढ़ती महत्ताको नष्ट करनेमें जरा भी वह नहीं हिचकता। धर्मकी पवित्र मर्यादा चाहे रसातलमें मिल जाय, चाहे महर्षियोंका यह उद्देश्य कि "न धर्मो धार्मिकैर्विना" नष्ट हो जाय, पर इसकी कुछ परवा नहीं की जाती। यह सब कौन करवाता है? पक्षपात—अनुचित

पक्षपात । राजा वसु यह अच्छी तरह जानता था कि जो पर्वत कह रहा है वह सर्वथा मिथ्या है । मुझे उसका पक्षपात न करना चाहिए । पर इसकी परवा न कर उसने एक वक्त मुहँसे निकले हुए वचनोंका अनुचित पक्ष लिया—आंखोंके सामने अपना अधःपतन देखकर भी वह अपने पक्षको न छोड़ सका—नरक जाना स्वीकार कर लिया, पर सच्ची बात कहना उसने कबूल न की । यह क्यों? उसी पक्षपातसे । हम प्रतिदिन इन दृष्टान्तोंको सुनते हैं और यह जानते हैं कि पक्षपात बुरा है, पर फिर भी उसे छोड़ते नहीं । इसका कारण सिवा इसके, कि हमारा पतन अभी और होना है, क्या कहा जा सकता है । एक बात और खटकती है, वह यह कि पक्षपात अच्छे अच्छे समझदार, पढ़े लिखे तकको भी अपने आपेसे भुला देता है । खेद नहीं होता यदि यह मूर्खोंके ही हृदयोंको गन्दा बनाता । जैन समाजकी जो आज यह हालत है, उसकी थोड़ीसी संख्यामें भी जो इस तरहका विप्लव है—उसकी सम्मिलित शक्तिका दिनपर दिन ह्रास होता जा रहा है—इसका कारण भी पक्षपात, दुराग्रह और अनुदार विचार हैं । हममें इनकी बहुत अधिकायत है । इसीसे इस उन्नतिके युगमें भी हमें परस्परकी मारकाटके कुछ अच्छा नहीं जान पड़ता । अनुचित पक्षपात वा आग्रहसे एकका एक बुरा चाहते हैं । पर यह हमारी नितान्त असमझ है । पक्षपातसे हममें कहांतक संकीर्णता आ जाती है, इसका एक ताजा उदाहरण हम आपको सुनाते हैं—

जैनगजटके २४ वें अंकमें मास्तर दरयावसिंहजीका **शास्त्रीय-**

चर्चा शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है। लेख प्रश्नोत्तर रूपमें लिखा गया है। उसमें वहाना किया गया है कि हमने एक सज्जन धर्मात्मासे कुछ प्रश्न किये थे। उन्होंने उनका जैसा उत्तर दिया है वह पाठकोंके सामने उपस्थित किया जाता है। पर हमें यह विश्वास नहीं होता कि वे उत्तर मास्तर साहबकी कल्पनाप्रसूत न होकर किसी अन्यकी कल्पनासे निकले होंगे। क्योंकि उसी अंकमें एक कृतघ्नता शीर्षक लेख भी मास्तर साहबहीका लिखा हुआ छपा है। पर वह छपाया गया है भूरालालजी रतलामवालोंके नामसे। हम भूरालालजीसे खूब परिचित हैं। वे पहले तो ऐसे झगड़ोंको समझते ही नहीं और समझते भी हों तो उन्हें हिन्दीके लिखनेका बिल्कुल मुहाविरा नहीं है। पर बात यह है कि मास्तर साहब अपने विचार विरुद्ध विषयोंपर टीका टिप्पणी तो करना चाहते हैं, पर आड़में। खुले तौरपर किसीपर आक्षेप करना वे अच्छा नहीं समझते हैं। यह पद्धति ठीक नहीं। जो कुछ लिखना हो वह दूसरों-का सहारा न लेकर अपने नामसे लिखा जाना चाहिए। क्योंकि जब हम सत्य बात लिख रहे हैं तब हमें डर किस बातका ?

मास्तर साहबने उक्त लेख अपने नामसे न लिखकर उसमें यह वहाना क्यों किया है कि हमने एक धर्मात्मासे प्रश्न किए थे उनका उत्तर उन्होंने ऐसा दिया है। इसका कारण वे ही जाने। इसमें सन्देह नहीं कि मास्तर साहब स्पष्ट-वक्ता और धर्मके एक अच्छे जानकार हैं। हम उन्हें सदासे आदरकी दृष्टिसे देखते आये हैं और सदा वैसे ही देखेंगे। भले ही उनके हमारे

विचारोंमें भेद हो, पर इसका अर्थ यह नहीं कि जैसा आज कलके कुछ संकीर्ण हृदयी अपने विरुद्ध विचारवालोंको अपना दुश्मन जानने लगते हैं। ऐसी समझवाले बड़ी भारी भूल करते हैं और तत्व निर्णयके द्वारको बन्द करते हैं। मास्तर साहब हमारे आदर पात्र होनेपर भी "शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि" इस नीतिके अनुसार हमें उनके विषयमें लिखनेको बाध्य होना पड़ता है। हम इसके लिए मास्तर साहबसे क्षमा चाहते हैं।

मास्तर साहबने उक्त लेख भले ही जैन जातिकी शुभ कामनासे लिखा हो, परन्तु वह कई स्थलपर उनकी शानके विरुद्ध लिखा गया है। हमे पूर्ण विश्वास है कि उन्हें स्वयं उसमें लिखी हुई कई बातोंपर आत्मविश्वास न होगा। पर पक्षपातसे वे अपने स्पष्टवादिताके पवित्र पथसे सर्वथा खिसक गये हैं। हमें तो उसे पढ़कर बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि मास्तर साहब सरीखे धर्मज्ञ और जानकार पुरुषके ऐसे अपवित्र विचार क्यों? उन्हें किसीसे कुछ लेना देना नहीं, फिर यह सत्यकी हत्या क्यों? पर पक्षपात! तेरा सत्यानाश हो, तूने सारी जातिको धूलमें मिला दिया, भाईकी भाईमें शत्रुता करादी, अच्छे अच्छे समझदार और विद्वानोंकी आंखोंमें धूल डाल दिया, उन्हें सत्यमार्गसे च्युतकर अपने वश किया, और अब न जाने क्या तू करना चाहता है? अब तो इस जातिका पीछा छोड़! जिससे ये भाई भाई प्रेमपाशमें बंधकर अपनी जातिकी भलाई करें।

मास्तर साहबने अपने शास्त्रीयचर्चा नामक लेखमें—आजकल कई पंडितमन्य तो सम्यग्दृष्टिको सप्तव्यसन सेवन करना सिद्ध कर

रहे हैं। इसका कारण क्या? इस प्रकार प्रश्न उठाकर उसका उत्तर यों दिया है—जो पुरुष स्वयं चारित्र भ्रष्ट हैं, अर्थात्—सप्त-व्यसनादि लोकनिंद्य कार्य करते हुए भी उच्च बनना चाहते हैं वे ही ऐसी ऐसी विपरीत बातें पुष्टकर अपने अनुयायियोंको अधोगतिका मार्ग सुझाते हैं।"

ये उद्गार उसके हैं—जो हिंसा, झूठ आदि पापके छुड़ानेवाले धर्मका पालक है और जिस धर्ममें न केवल जैनियोंके प्रति किन्तु सारे संसारके जीवोंके प्रति मित्रता करनेका पवित्र उपदेश दिया गया है। पर आश्चर्य होता है कि जिस लेखके द्वारा जैनियोंको सच्ची बातके सुझानेका दावा किया गया है उसीके द्वारा लेखक स्वयं सत्यता न सीख कर उसे अपने पक्षपातके पड़देकी आड़में छिपा दिया है। ऐसा क्यों किया गया? इसका उत्तर पाठक स्वयं सोच सकते हैं। अस्तु। जो कुछ हो, मास्तर साहबने जो लिखा है वह सत्य होना ही चाहिए। क्योंकि मुझे जहांतक विश्वास है वे कभी झूठ नहीं बोलते। तब क्या मुझे मास्तर साहब यह बात बतलाकर, कि वह पंडितमन्य कौन हैं जो सप्तव्यसन सेवन कर दूसरोंको भी अपना अनुयायी बनाना चाहता है, संतुष्ट करेंगे—मेरे दिलका भ्रम दूर करेंगे? यदि मै गल्तीपर न होऊं तो यह कह सकता हूं कि संभवतः यह आपका लिखना पंडित गोपालदासजी या कुँवर दिग्विजयसिंहजीके सम्बन्धमें होगा। क्योंकि जिस विषय-को लेकर आपको उक्त प्रकार शंका समाधान करना पड़ा है उसका सम्बन्ध उक्त दोनों विद्वानोंसे ही है। उन्हींने अभी ऐसे विषयके प्रश्नका

समाधान कर आप लोगोंको लिखनेका मौका दिया है । दूसरे—मुझे ठीक स्मृति हो और यदि मैं भूलता न होऊं तो यह कह सकता हूं कि आपने एक पत्र बम्बईके किसी सज्जनको लिखकर इसी आन्दोलनकी बात उनसे पूछी थी । उसमें पंडित गोपालदासजीका भी जिकर था । इससे मेरा उक्त विश्वास दृढ़ होता है । और यदि यह बात वास्तवमें ही ऐसी होगी तो आप भी उससे क्यों इन्कार करेंगे ? तब क्या मैं आपसे यह जाननेकी इच्छा कर सकता हूं कि आपने पंडित गोपालदासजीको मांस खाते, शराब पीते, वेश्या और परस्त्रीका सेवन करते तथा शिकार खेलते कब और कहां देखे हैं। बड़ी कृपा होगी यदि आप जैनियोंको यह बतलाकर उन्हें कुपथमें गिरनेसे बचावेंगे । जैन जातिका बहुभाग जो पंडितजीका भक्त बन रहा है—उनकी माया जालमें फँस रहा है—उसका भला करेंगे । कीजिए इस परोपकारके कामको । मास्तर साहब ! आपके उदार विचारके सम्बन्धमें हम क्या लिखें ? आपकी लेखनी तो ऐसा लिखते कुण्ठित नहीं हुई, पर हमें तो शर्म लगती है । क्योंकि आखिर हैं तो आप हमारे पूज्य ही न ? आपका लिखना कैसा है, इस विषयमें हम कुछ नहीं लिखते । परन्तु आपहीसे एक बात और पूछ लेते हैं—इसलिए एक मिनटके लिए आप अपने हृदयसे पक्षपात बिलकुल हटा दीजिए, विचारोंको कुछ उन्नत कर लीजिए, हृदय शुद्ध एवं निर्दोष बना लीजिए, जैनी मात्रको प्रेमकी दृष्टिसे देखिए-उन्हें अपना भाई समझिए और परमात्माका हृदयमें आह्वान करके कह तो दीजिए कि सचमुच पंडित गोपालदासजी सातों व्यस-

नोंके अथवा एक या दोके भी सेवन करनेवाले हैं ? क्या आपका आत्मा विश्वास पूर्वक ऐसा कह देगा ? क्या आपको स्वयं उनके विषयमें ऐसा विश्वास है ? यदि है तब तो आप उसे प्रगट करेंगे ही, अन्यथा कहिये तो ऐसा लिखनेसे आपका मतलब क्या था ?

संभव है हमारे इस लेखपर यह आक्षेप किया जाय कि उत्तर देनेवाला तो कौन और बला किसके सिरपर ? पर ऐसा कहने पर भी वे निर्दोष कभी नहीं बन सकते । कारण--लेखके आरंभमें यह कहा गया है कि "हमने एक धर्ममर्मज्ञसे कुछ प्रश्न किए थे, उनका जो सन्तोष जनक उत्तर मिला वह सर्व साधारणके जाननेके लिए प्रकाशित किया जाता है । उत्तर देनेवाले सज्जनको धन्यवाद ।" इससे स्पष्ट होता है कि लेखकने उत्तरपर सन्तोष जाहिर कर उन्हें अपने विचारानुकूल माने हैं । यदि उन्हें यह बात मान्य न होती तो वे अवश्य उसपर अपनी असम्मति जाहिर करते । पर ऐसा किया नहीं । जो हो, लेखकने जातिके एक अपूर्व विद्वान् एवं आदर्श सदाचारीपर जो अपने हृदयकी दुर्बलता दिखलाई है वह उनके उदारताकी बाधक है । यदि इस विषयमें उन्हें लिखना ही था तो संसार शब्दोंसे भरा पड़ा था, क्या उसमें अच्छे शब्द उन्हें न मिलते ? पर पक्षपात जब न होता तब ही ऐसा होना संभव था न ? हमारी समझके अनुसार लेखकने पंडितजीके साथ बड़ी गहरी भूल की है । उन्हें अपनी इस भूलपर पश्चात्ताप करना चाहिए । इस लिखनेसे हमारा यह आशय नहीं है कि कोई किसीके विरुद्ध लिखे ही नहीं । किन्तु वह बहुत खुशीसे लिखे । पर सभ्यताकी सीमा सुरक्षित रहनी चाहिए ।

इस विषयके अतिरिक्त उसी लेखमें एक छापेके सम्बधका प्रश्न उठाकर छापेके प्रचारकोंको मन मानी भली बुरी सुनाई जाकर अपनी उदारताका परिचय दिया गया है। वह भी अनुचित है। और न ऐसा लिखना मास्तर साहबको शोभा ही देता है। कारण-छापेके वे स्वयं भक्त हैं। आज भी उनके पास बहुतसे ग्रन्थ छपे हुए मौजूद हैं। ठीक यह कहावत चारितार्थ होती है कि "आप खायँ काकड़ी और दूसरोंको दे आखड़ी।" पहले उन्हें स्वयं छापेका परित्याग करना चाहिए। फिर उससे दूसरोंको विरक्त करना अच्छा भी होगा। यह क्या कि स्वयं तो दिनों दिन उसके अनन्य आराधक बनते जायँ और दूसरोंके सामने उसीकी बुराई करें? पर है तो कलियुग न?

शास्त्रीयचर्चामें और भी बहुतसे विषयोंपर: प्रश्नोत्तर लिखे गये हैं। उनके सम्बन्धमें हम फिर कभी विचार करनेका यत्न करेंगे। हमें आशा है—मास्तर साहब उदारताके साथ इस लेखको पढ़कर "युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः।" इस नीतिके चरितार्थ करनेकी कोशिश करेंगे और यदि हमारी भूल हो तो उसे सूचित करेंगे। यदि वह हमारे ध्यानमें आ जायगी तो हम उसका प्रतिवाद करनेको तैयार हैं।

एक मालवी।

मनकी मौज।

पाठक ! मैं मौजी हूं, इसलिए जो मनमें आता है उसे
एक वक्त तो कह ही डालता हूं। वह भला हो या बुरा, इसकी मैं
कुछ परवा नहीं करता। सबको खुश करना ही मेरे जीवनका
मुख्य उद्देश्य है। वा यों कह लीजिए कि मेरा अवतार ही इसी
लिए हुआ है। मेरा मन जैसा मौजी है, वैसा ही शरीर भी है।
मैं कभी सनातनी, कभी जैनी और कभी आर्यसमाजी भी बन जाता
हूं। ऐसा करना मेरे लिए बुरा नहीं है। क्योंकि मैं तो धर्म कर्म कुछ
नहीं समझता। मेरे लिए तो पैसा ही महा धर्म है। वह जहां मिल-
ता है वहीं मेरा रूप बदलकर उसीमें मिल जाता है। पर हां इसमें
सन्देह नहीं कि मैं जिस रूपमें अपनेको मिलाता हूं, अथवा यों कह
लीजिए कि जैसा बहुरूपियेका स्वांग मैं धारण करता हूं, फिर मेरी
पहचान करना उतना ही कठिन हो जाता है जितना समुद्रमेंसे सरसोंका
पता लगा लेना। भले ही आप इसके लिए मुझे धूर्त, मायावी, कपटी
कहें, परन्तु मैं तो अपनी मनके माफिक बड़ा ही पवित्र हृदयवाला
हूं। क्योंकि यह मैं पहले ही बतला चुका हूं कि मेरा परम धर्म
तो पैसा है और उसीकी प्राप्तिके लिए यह सब उपाय है। भला मैं
अपने स्वतंत्र विचारोंके अनुसार यदि उक्त सिद्धान्तको यथार्थ और
कल्याणकारी समझूं तो इसे आप बाधित नहीं ठहरा सकते।
किसीके विचारोंपर किसीको दखल देनेका इस सभ्य जमानेमें अधिकार
नहीं है। इसलिए मैं कुछ भी कहूं, उसपर आपको नफरत नहीं
करनी चाहिए। जैसे आप आदमी हैं, मैं भी तो वैसा ही हूं।
सुनिए—मैं था तो वैदिकमार्गी, पर जब मैंने देखा कि यहां

कुछ गुजर नहीं होती और खानेके लिए प्रति दिन चाहिए ही, तब मैंने एक युक्ति निकाली और बहुत विचारके साथ निश्चय किया कि जैनियोंके मन्दिर बड़े होते हैं, उनमें पोलें भी बड़ी बड़ी होंगी। यह सब सोच विचार कर मैंने उनका आश्रय लेना उचित समझा। मैं कुछ थोड़ा बहुत लिखा पड़ा भी हूं। यद्यपि मुझे स्वयं अपने पढ़े लिखेपर पूरा विश्वास नहीं है, पर तब भी मैं अपनी तारीफ करनेमें कभी कसर नहीं करता। मैंने इधर तो कुछ जैनोंसे परिचय बढ़ाना शुरु किया और जोड़ तोड़ लगाकर एक पाठशालाका पंडित भी बन गया। मैं अपनेको अच्छा नैयायिक, अच्छा वैयाकरणी, अच्छा कवि बतलाने लगा। लोग बेचारे मेरे भीतर न देखकर मेरी बड़ी तारीफ करने लगे। मैंने थोड़े ही दिनोंमे अपनी मोहनी धूल डालकर उन्हें अन्धे बना दिये। मैंने धीरे धीरे अपना पैर भी आगे बढ़ाना आरंभ कर दिया। मैं मन्दिरमें जाने लगा, दर्शन करने लगा, शास्त्र स्वाध्याय करने लगा, सामायिक करने लगा और सबसे बड़ी बात तो मैंने यह की कि उनके हर एक धार्मिक विषयमें मैं अपनी लंगड़ी टांग अड़ाने लगा। जो जैनी मिलता उसीसे कुछ न कुछ पूछ ही बैठता। फल यह हुआ कि मैं अबसे जैनी कहलाने लगा। मेरे हृदयमें जैनधर्मकी कितनी गंध थी यह कहकर मैं अपना भण्डा फोड़ करना नहीं चाहता, पर हां यह विश्वास करने योग्य बात है कि थोड़े ही समयमें मैं अच्छा प्रतिष्ठित पंडित बन गया। लोग मुझे बड़े आदरसे झुक झुक कर नमस्कार करने लगे। हां इसी समय मेरे भाग्यसे जैनियोंके परस्पर पंथोंमें एक शास्त्रार्थ छिड़ गया। इस मौकेको छोड़ना अच्छा न समझकर मैंने भी लेखनीको संभाली

और फिर जो कुछ दिलमें आया आड़ा टेढ़ा लिखकर किसीको नरक और किसीको स्वर्गका मार्ग वतला दिया। जिन्हें मैंने स्वर्गका मार्ग वतलाया वे तो मुझपर जी जानसे न्यौछावर होगये। फिर क्या कहना, मेरा आदरपर आदर होने लगा। वड़ी वड़ी सभा समितिमें मेरा आना जाना आरंभ हुआ। मेरे व्याख्यान भी होने लगे। लोगोंकी इस अटूट श्रद्धाका मुझे वहुत अच्छा फल मिला। मेरे दिन सुख चैनसे कटने लगे।

पाठक! लिखते हुए मुझे वड़ा दुःख होता है कि वे सुखके दिन वहुत न ठहरे। सत्यानाश हो उस ब्राह्मणका जिसने लोभ देकर मुझसे इधरकी नोकरी छुड़वादी। मैं उस पापीकी वहकावटमें आ गया और इधरकी नौकरी छोड़ वैठा। नौकरीके साथ साथ मुझे अपना स्वांग भी वदल डालना पड़ा। उसी दिनसे मेरा सुख-स्वर्ग भस्म होगया। मैं उन दिनोंके लिए आज भी रोता हूं— कलपता हूं, पश्चाताप करता हूं। अधिक दुःख तो मुझे इस वातका होता है कि कहां तो वे वड़े वड़े शुद्धाम्नायी पंडित मेरे छन्दानुवर्ति और कहां अव मुझे उनके सामने लज्जित होना? अस्तु। "सव दिन नहीं सरीखे जाते" इस उक्तिके अनुसार कभी फिर भी मुझपर परमात्माकी कृपा होगी ही।

भला हो मालवेके प्रतिष्ठाकारक सेठोंका: जिन्होंने फिर मुझे एक अच्छा मौका हाथ दिया, जो मैंने पुनर्वार जैनधर्मकी दीक्षा लेली है। अव जहांतक वन पड़ेगा वड़ी जल्दी रंग जमा कर मैं सवको अपनी मुट्ठीका खिलौना वनाता हूं। जैनियोंकी पोल

ऐसी वैसी नहीं है। वह बड़ी विशाल है। उसमें मुझ सरीखे तो हजारों बड़ी अच्छी तरह घुस सकते हैं। अरे! जिस पोलमें दुर्गादत्त सरीखे क्षणिक पुरुष भी जब घुस गये तब मैं—एक पक्का—बना बनाया—न घुस सकूं, यह कभी संभव नहीं। देखते जाइए क्या रंग लाता हूं। और जालसे निकली हुई इन मछलियोंको फिर किस चातुरीसे, किस माया—विश्वाससे, किस कूट कपटसे, फँसाता हूं। मेरे आराध्य—परम उपास्य—स्वार्थदेव ! तुम मुझ गरीबकी—अपने अनन्य भक्तकी—सहायता करना। लीजिए—पाठक ! आप भी आराम कीजिए। अब फिर कभी मैं अपने पवित्र दर्शनोंसे आपके जीवनको सफल करनेका यत्न करूंगा।

मौजी।

गुरुओंका उपदेश।

भारतमें बहुतसे मत ऐसे हैं जिनके संचालक आचार्य, गुरु आदि अपनी विषय वासनाओंको सन्तुष्ट करनेके लिए बेचारे भक्तिके अनन्य उपासक शिष्योंको जब उपदेश देते हैं तब यह बात बहुधा कहा करते हैं कि "मनुष्यको अपने कल्याणकी ओर दृष्टि देनी चाहिए। उन्हें गुरुओंके आचरण पर कभी दृष्टि डालना उचित नहीं है। वे कैसे भी हों पर तुम्हारे लिए तो अच्छा मार्ग बताते हैं। तुम्हें अपने मतलबपर लक्ष्य रखना चाहिए आदि"। बेचारे भक्त लोग गुरुजीके सर्वज्ञ तुल्य वाक्योंका कभी प्रतिवाद न कर जैसा वे कहते हैं करते हैं। वे कभी इस बातको सोचते तक

नहीं कि जो स्वयं पत्थरकी नाव पर चढ़ा हुआ है वह जब अपनी ही रक्षा नहीं कर सकता तब औरोंको क्या बचावेगा? जो स्वयं विषयोंकी आगमें जल रहा है वह दूसरोंको क्या सुरक्षित रख सकेगा? जो स्वयं इन्द्रियोंका गुलाम है वह अपने शिष्योंको विषयोंपर क्या विजय प्राप्त करावेगा? जो आप ही पैसेके लिए द्वार द्वारका भिखारी है और उसकी प्राप्तिके लिए अनेक कूट कपट द्वारा लोगोंको धोखा देता है, छल करता है, अपनी अवस्थाके अयोग्य कर्म करनेपर उतारू हो जाता है वह क्या दूसरोंको वैरागी, उदासीन, सरल परिणामी और पवित्र पथ पर चलने वाला बनायगा? जिससे स्वयं स्त्रियोंका साथ नहीं छोड़ा जाता वह क्या उन्हें उनसे मुक्त होनेका मार्ग बतायगा? सार यह कि जब स्वयं गुरु ही नखसे शिख पर्यन्त संसार कीचड़में फंसा हुआ है, उससे निकलना पसन्द ही नहीं करता वह अपने भोले भक्तोंको कभी संसारसे पार नहीं कर सकता। यदि ऐसा ही होता तो संसारको गुरुओंकी कुछ आवश्यकता न थी। संसार ही सारा गुरुमय बन जाता। पर उन बातोंपर विचार करे कौन! कदाचित् शिष्य करना भी चाहें तो उन्हें गुरुजी ऐसा मंत्र सिखा देते हैं कि फिर उनकी वह अभिलाषा ही नहीं रहती। वे जहां तहां गुरुजीके पवित्रमंत्रसे कीलितसे हो जाते हैं। उन्हें कोई दूसरा इन बातोंको समझाना चाहे तो उससे समझना तो दूर रहा उल्टा उन पर विपरीत परिणाम होता है और प्रत्युत समझानेवालेको उनकी अकृपाका पात्र बनना पड़ता है। ऐसी हालतमें कर्तव्यशील मनुष्य-

को भी समदर्शी बनना पड़ता है। खेद है लोगोंकी ऐसी समझपर जिन्हें कि अपने हितका मार्ग नहीं दिखाई पड़ता।

इन स्वार्थी गुरुओंकी कृपाका ही यह फल है जो आज भारतका आशातीत अकल्याण हो रहा है। बेचारे भक्त लोग इन माया और दुराचारके पुतलोंके लिए अपना तन, मन, धन अर्पण कर देते हैं। देशके दुखी पैसे पैसेके लिए तरसें, उन्हें कोई सहायता नहीं देता। देश चाहे दिनपर दिन दरिद्रताका घर बन जाय, शिक्षाके लिए चाहे देश या जातिके बालक रोते फिरें, पर इन विषयोंके अनन्यदास गुरु महाराजोंके लिए तो लाखों करोड़ों चाहिए ही। भला कहिए तो जिस देशपर गुरुओंकी ऐसी तीव्र दृष्टि है फिर वह अभागा न हो, दरिद्र न हो, यह कभी संभव है?

यह तो भारतकी अन्य जातियोंकी हालत है अब इसी विषयका बीज कुछ दिनोंसे जैन जातिकी छातीपर भी बोया जाने लगा है और उसके कुछ कुछ अंकुर फूटने भी लगे हैं। कुछ दिन हुए हमने भी एक गुरुजीका ऐसाही उपदेश सुना था कि श्रावकोंको गुरुओंके आचरणपर ध्यान न देकर उनके उपदेशपर ध्यान देना चाहिए। क्योंकि जिनका अंतरंग शुद्ध है और उनका बाह्य आचरण अच्छा न भी हो तब भी उन्हें बन्ध कम होता है। वे चाहे कैसे भी हों, पर हैं तो श्रावकोंसे अच्छे ही। और दूसरे यह भी तो नहीं है कि श्रावक यथार्थमें ही श्रावकके आचरणके धारक हों। जैसे श्रावक वैसे ही गुरु। वे बारहों महीने एक वक्त भोजन तो करते हैं।

यह क्या थोड़ा है ? तुमसे तो इतना भी नहीं बन पड़ता। अब तुम चाहो कि " ते गुरु मेरे उर बसो " ऐसे गुरु हमें मिलें सो तो कभी मिलनेके नहीं। जैसा काल वैसे गुरु। इतना तो और अच्छा है कि कैसे भी हों गुरु मिलते तो हैं आदि "। यह तो गुरुजीका उपदेश होता है । इस पर उपासक लोग गद्गद होकर जब गुरुजीकी तारीफ करने लगते हैं। उस समयका रंग पाठकोंको ठीक इसका स्मरण करावेगा कि " अहो रूपमहो ध्वनिः "।

लीजिए पाठक ! आप गुरु गुरु चिल्लाते रहते हैं, अब आपके समाजमें भी कई गुरुराज उत्पन्न होगये हैं। उनकी सेवा भक्ति कीजिए और मनोवाञ्छित धन, सम्पति, पुत्र, पुत्री, शत्रुनाश, कीमिया आदि जो कुछ चाहते हों उसे प्राप्त कीजिए। जैन समाज पहलेसे तो रसातलमें पहुंच रहा है, अब देखें इन गुरुओंकी कृपासे उसकी और कितनी दुर्दशा होती है।

पाठक ! चिन्ता न कीजिए । क्योंकि कलियुगमें तो ऐसा होगा ही। नाहक चिन्ता करके दुःख उठानेसे कुछ फायदा नहीं है । हां बन सके तो लोगोंको शिक्षा द्वारा जगाइए । जिससे वे अपने इन परम पवित्र गुरुओंकी कर्तूत जान सकें। यदि आप हमसे भी इन गुरुओंके सम्बन्धमें कुछ जानना चाहेंगे तो समय समयपर इन महात्माओंके परम पवित्र चरित हम भी सुनानेकी कोशिश करेंगे।

साहित्य-सम्मति ।

विनोद—श्रीयुत कुँवर हनुमन्तसिंहजी और श्रीयुत पं. पन्ना-लालजी शर्मा द्वारा लिखित और राजपूत ऐंग्लोओरियण्टल प्रेस आगरामें मुद्रित और प्रकाशित । वहींसे प्राप्य । कीमत दश आना ।

इसमें—मनोहरका बालविवाह, भाई हों तो ऐसे हों, कुसंगतिका दुष्परिणाम, उदारहृदय भाई, सुकार्यका सुफल, आदिक आठ आख्यायिकाएं संग्रहीत हैं । ये सब उक्त लेखकोंके द्वारा सम्पादित होनेवाले **स्वदेशबान्धव** मासिक पत्रमें छप चुकी हैं । आख्यायिकाएं सामाजिक और शिक्षाप्रद हैं । पढ़नेसे चित्तपर असर पड़ता है । मनोरंजनके साथ साथ अपनी सामाजिक स्थितिके सुधार सम्बन्धकी बहुतसी बातें इनके द्वारा जानी जा सकती हैं । इनमें कहीं पवित्र प्रेम, कहीं बुरे कामोंसे घृणा और कहीं कुरीति-योंका दुष्परिणाम अच्छा दिखलाया गया है । एक और इनमें विशेष बात यह है कि—इन्हें बालक, बालिका, युवा, युवती आदि सब निःसंकोच भावसे पढ़कर लाभ उठा सकते हैं । पुस्तक सबके संग्रह करने लायक है ।

माधवी, श्रीदेवी और **रत्नप्रभाकर** ये तीन छोटे छोटे उपन्यास श्रीयुत श्यामलालजी अग्रवाल मथुरावालेंने हमारे पास समालोचनाके लिए भेजे हैं । तीनोंके लेखक श्रीयुत रूप-किशोरजी जैन, विजयगढ़ (अलीगढ़) निवासी हैं । कीमत तीनोंकी दो दो आने हैं । प्रकाशकके पतेसे मिल सकते हैं ।

माधवीके लिए लेखकने लिखा है कि " एक विचित्र घटना"

पर हमें तो इसमें कुछ विचित्रता मालूम नहीं दी। कदाचित् ऐसा लिखनेसे लेखकका आशय तिलिस्मसे हो तो वेशक कुछ गंध उसकी इसमें मिल सकेगी।

श्रीदेवी—शीलरक्षाकी एक साधारण कहानी है।

रत्नप्रभाकर—इसमें "डबल जोरूका परिणाम" दिखलाया गया है। लेखकने लिखा है कि यह अपूर्व गार्हस्थ्य उपन्यास है। पर हमारे समाजमें तो डबल जोरूकी प्रथा वर्तमानमें नहीं दीख पड़ती।

इन उपन्यासोंके पढ़नेसे हमें कहीं अस्वाभाविकता भी दिखाई पड़ी। कथाका अनुसंधान हृदयहारी नहीं जान पड़ा। तीनों पुस्तकोंमें भूमिका नहीं है। इसलिए नहीं जान पड़ता कि ये काल्पनिक हैं या किसी आधरपर इनकी रचना की गई है। संभवतः काल्पनिक हों तो लेखक परिशीलनसे आगामी कृतकार्य भी हो सकते हैं। छपाई साधारण है।

अहिंसा—श्रीयुत बाबू दयाचन्दजी गोयलीय बी. ए. द्वारा प्रकाशित और अनुवादित छोटासा ट्रेक्स। इसमें अहिंसाका बड़ी सुन्दरतासे प्रतिपादन किया गया है। मूल लेख बाबू ऋषभदासजी बी. ए. मेरठ द्वारा अंग्रेजीमें लिखा गया है।

जिनेन्द्रमतदर्पण—श्रीयुत बाबू देवेन्द्रप्रसादजी द्वारा प्रकाशित छोटासा ट्रेक्ट। ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीके लिखे हुए हिन्दी ट्रेक्टका बङ्गला अनुवाद। इसमें अनेक अंग्रेज विद्वानोंके द्वारा जैन धर्मकी प्राचीनता और बौद्धोंसे भिन्नता सिद्ध की गई है।

असत्य आक्षेपोंका उत्तर—कुछ दिन हुए पं. गंगाधर शास्त्रीने एक " अलिविलाससंलाप " नामक खण्ड काव्य बनाया था। उसमें उन्होंने जैनसिद्धान्तपर भी अपने मनोनीत भ्रमर द्वारा संलाप करवाया था—जैन धर्मपर आक्षेप करवाये थे। उनके वे आक्षेप सुदृढ़ थे या नहीं, यह बात जैन धर्मका अनुभवी विद्वान् ही जान सकता है। हमें तो यह भी सन्देह है कि शास्त्रीजीने जैन धर्मके जिस सिद्धान्तको लेकर खण्डन किया है उसे वे ठीक ठीक समझे थे या नहीं? इसमें सन्देह नहीं कि शास्त्रीजी अपने विषयके अच्छे नामी विद्वान् थे, पर इससे यह नहीं माना जा सकता कि वे एक दूसरे धर्मके सिद्धान्तज्ञ भी वैसे ही होंगे। एक अच्छेसे अच्छे विद्वान् वैरिष्टरसे आप डाक्टरीकी बातें पूछिए, उस विषयमें वह कुछ भी नहीं बता सकेगा। सच तो यह है कि जब वह उस विषयको जानता ही नहीं तब बतलायगा ही क्या? ठीक यही हालत शास्त्रीजीकी जैनसिद्धान्तका खण्डन लिखते वक्त हुई है। अस्तु। उनके आक्षेप चाहे सच हों या झूंठ, पर सर्व साधारण भ्रममें न पड़ें इसलिए उनका उचित उत्तर तो दिया जाना ही चाहिए था। उक्त पुस्तक इसी विषयको लेकर लिखी गई है। लेखक—सच्चिदानन्द भिक्षु हैं। लेखकने अपनेको गौतमभाष्य, न्यायवार्तिक, श्लोकवार्तिक, ब्रह्मसूत्र, शांकरभाष्य, शाबरभाष्य और सांख्यदर्शन आदि अन्य सिद्धान्त और स्याद्वादमंजरी, रत्नावतारिका, अनेकान्तजयपताका और सम्मतितर्क आदि जैनन्यायका जानकार बतलाया है। जो हो, साधारणरीतिसे शास्त्रीजीके आक्षेपोंका उत्तर

अच्छा दे दिया गया है । पर अभी और भी विस्तृत उत्तरकी आवश्यकता है । जैन सिद्धान्तके पूर्ण अनुभवी विद्वान् इस विषयपर अपने विचार जाहिर करें तो बड़ा अच्छा हो।

लेखक महाशयके सम्बन्धमें हमें एक बात और जान पड़ी कि वे पहले जैन नहीं थे, पर अब विजयधर्मसूरि महाराजके उपदेशसे उन्होंने जैन धर्मको कल्याणका पथ समझकर स्वीकार किया है । यदि आपने शुद्ध और सरल हृदयसे ऐसा किया हो तो अच्छा है । वर्तमानके दो चार उदाहरण हमें खटका पैदा करते हैं । आपके लेखसे ऐसी आशा तो नहीं होती कि आप भी उनके:सरीखा ही जैन समाजके प्रति वर्ताव करेंगे। क्योंकि विद्वान् लोग अपने पूर्व पुरुषोंके निम्न लिखित वचनोंका पूर्ण पालन करते हैं—" अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति । " पुस्तकमें कहीं कहींपर कठोरतासे भी काम लिया गया है । ऐसा न किया जाकर सरलतासे काम लिया जाता तो अच्छा होता । पुस्तक जैनशासनके उपहारमें वितीर्ण की गई है ।

पत्रों और समाचारोंका सार ।

दान—कोपरगांव निवासी श्रीयुत चुन्नीलालजी राजारामजीकी गृहिणीका परलोकवास होगया था । आपकी इच्छा थी कि हम उसके नुकतेमें रुपया न लगाकर किसी धार्मिक काममें लगावें । इस विषयमें आपने पञ्चोंसे भी प्रार्थना की थी कि यदि आप लोग कहें तो हम इस रुपयेको किसी धार्मिक काममें लगादें ।

पर आपकी जवानी मालूम हुआ कि पञ्चोंने ऐसा करना स्वीकार न कर उन्हें नुकता करनेके लिए बाध्य किया । इसलिए उन्हें पंचोके कहे माफिक नुकता करना पड़ा । इसके अतिरिक्त और भी आपने ७००) रु० दान किया है । वह इस तरह—५००) रु० इसलिए कि उनके व्याजसे प्रतिवर्ष पञ्चोंको एक रसोई दी जाय । ६०) रु० जैनसिद्धान्तपाठशाला मोरेना, ६०) रु० ऋषभब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुर, २५) रु० श्राविकाश्रम बम्बई, २५) रु० शिक्षाप्रचारकसामिति जयपुर, ४) रु० सत्यवादी, ११) रु० का गायोंको चारा, १०) रु० की कबूतरोंको जुवार, ५) रु० कोपरगांवके मन्दिर ।

प्रथम वार्षिकाधिवेशन—जैन बालसभा हाथरसका, ११ जौलाईसे १२ जौलाईतक बड़ी धूम धामके साथ प्रथमाधिवेशन होगया । श्रोताओंकी अच्छी भीड़ होती थी । अन्यमतावलम्बी भी उपस्थित होते थे ।

अहिंसाधर्मका अपूर्व प्रचार—कुछ दिनोंसे बागड़प्रान्तमें एक महात्मा आए हुए हैं । आप अपनेको रामचन्द, श्रीकृष्ण,

---

नोट—सेठ चुन्नीलालजी राजारामजीको इस उदारताके लिए धन्यवाद । आप नुकतेमें रुपया न लगाकर धार्मिक काममें लगाना चाहते थे । उद्देश्य अच्छा था । न जाने पंचोंने ऐसा करनेसे उन्हें क्यों रोका? अस्तु । हमें एक बातके लिए सेठजीको भी उलहना देना है कि जब आप नुकता करना अच्छा न समझ कर उस रुपयेको किसी अन्य धार्मिक काममें खर्च करना चाहते थे तब न जाने आपने ५००) रु० फिर एक वैसे ही काममें क्यों दिए ? यद्यपि वह काम भी बुरा नहीं है पर तब भी उसकी उतनी जरूरत न थी जितनी कि किसी विद्याप्रचार आदिमें खर्च करने की ।

ऋषभदेव और पार्श्वनाथका उपासक बतलाकर उधरकी भील आदि असभ्य जातियोंमें अहिंसा धर्मका अपूर्व प्रचार कर रहे हैं। आपने लगभग डेढ़ लाख मनुष्योंसे जीव-वध करना और मांस मदिराका सेवन छुड़ा दिया है। महाराज डूंगरपुरने और रावजी साहेब कुशलगढ़ने एक एक गांव आपकी भेट कर आपका सम्मान किया था, पर महात्मानें उन्हें स्वीकार न किया। हां इतना अवश्य किया कि जब तक हम इस प्रान्तमें ठहरें, तब तक इनकी आमदनी अनाथ, गरीबोंके पालन पोषणमें खर्च की जाय। धन्य महात्मा! आपके इस अमानुषिक कर्तव्य-का हम किन शब्दोंमें गुणगान करें? हमारे पास ऐसे कोई शब्द नहीं। तब केवल परमात्मासे हम यह प्रार्थना करें कि वह आप सरीखे भारतमाताके सच्चे पुत्रको चिरंजीवी करे।

आय—जैनसिद्धान्तपाठशाला मोरेनाको बैसाख सुदीसे श्रावण वदीतक कुल १०२८ ॥) की आय हुई उसमें ७०७ ॥) मासिक सहायतासे और ३२१) एक मुश्त रूपेम मिले। विश्वंभरदास, मंत्री।

दिलजले चौधरीजी—अष्टाह्निकापर्व पर स्वपरहितप्रचारि-णी जैनसभाके सभासदोंने करैया निवासी श्रीयुत पं. बलदेव-दासजीको यहां बुलवाये थे। असाढ़ सुदी २ को आप पधारे। ३ या को शास्त्र सभा हुई। आपकी शास्त्र वांचनेकी शैली अच्छी है। रातको आपका व्याख्यान हुआ। श्रोता दो सौके लगभग उपस्थित थे। इसी तरह पर्व सानन्द समाप्त हुआ। पूर्णिमाके दिन एक विशेष

घटना हुई। वह यह कि यहांके चौधरी रघुवरदयालजीके हस्ताक्षरका एक नोटिस मन्दिरजीमें लगा हुआ था। उसमें लिखा हुआ था "सभा सम्बन्धी कोई कागजात मन्दिरमें न रहने पावे। चूंकि मन्दिर पंचायती है। अगर कोई रहेगा तो बाजाप्ता फौजदारीमें नालिश की जायगी।" नोटिस पढ़कर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। हम नहीं जान सके कि चौधरीजीको यह दिल जली क्यों पैदा हुई?

अफसोस है कि आपके इस नोटिसकी पंचोंने कुछ कदर न की और उसे फाड़कर फेंक दिया। क्यों चौधरीजी! इसे आप अपना सम्मान समझेंगे न? अच्छा होता यदि आप सोच विचार कर कार्य करते। मंत्री—जैनसभा भिण्ड।

सत्यवादीके देरीका कारण।

हम इसके लिए बड़े दुखी हैं कि सत्यवादी जबसे प्रकाशित होने लगा है तबसे उसका एक भी अंक ठीक समयपर प्रकाशित नहीं हुआ। पर क्या किया जाय, दैवी विपत्तीके सामने सबको अपनी हार माननी पड़ती है। पाठकोंको इसपर अधीर न होना चाहिए। हम उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि इस त्रुटिको हम बहुत जल्दी पूर्ण करनेकी कोशिश करेंगे। कई विषम कारणोंसे हमें बाहर जाना पड़ा था, इसलिए यह देरी होगई। इसके लिए पाठकोंसे हम क्षमाकी प्रार्थना करते हैं। आशा है पाठक हमारी प्रार्थनापर ध्यान देंगे।

विनयावनत—

सम्पादक सत्यवादी.

सूचना ।

हमने निम्न लिखित ट्रैक्ट जीवदयाके प्रचारार्थ प्रकाशित किये हैं । जिन महाशयोंको स्वयं पढ़ने अथवा मांसभक्षी भाइयोंको बाँटनेके लिये जरूरत हो, वे हमसे शीघ्र मँगा लेवें । मांसभक्षी भाइयोंको विना मूल्य देंगे, इतर महाशयोंसे केवल लागतके दाम लेंगे । जो महाशय ५) रुपये देकर हमारे स्थाई सहायक बन गये हैं उनसे कुछ न लेंगे ।

१. मनुष्याहार, हिंदी
२. मनुष्याहार, उर्दू
३. मनुष्याहार, बंगला
४. तर्कीदगोश्त, उर्दू
५. अहिंसा, जीव मात्रके प्रति मैत्री भाव, हिंदी
६. याद रखनेकी बातें, उर्दू, हिंदी
७. पशु पक्षियोंपर दया, हिंदी
८. " बंगला
९. " उर्दू
१०. दीवारोंपर चिपकानेके इश्तहार ।

सेवक—दयाचंद गोयलीय बी. ए.
मंत्री—जीवदयाविभाग. ललितपुर.

नामांकित और गुणकारी औषधियां ।

अमृतबिन्दु—यह—प्रख्यात वैद्यशास्त्र सम्पन्न श्रीमत्पूज्यपाद स्वामीके ग्रन्थके आधारपर बड़े प्रयत्नके साथ शुद्धरीतिसे तैयार किया गया है। इसके सेवन से—रक्तशुद्धि, धातुक्षीणता, स्वप्नमें वीर्यका गिरना, उपदंश (गरमी), प्रमेह आदि सब प्रकारके रोग नष्ट होते हैं । नपुंसकता नष्ट होती है । शरीरमें शुद्ध रक्तका संचय होकर वीर्य बढ़ता और गाढ़ा होता है । बालपनेमें—कुक्रिया-ओंसे की हुई क्षीणता दूर होकर शरीर पुष्ट और ताकतवर बनता है । शक्ति बढ़ाना, आरोग्यता रखना और रति समय आनन्द देना आदि अमृतबिन्दुके अमूल्य गुण हैं । पुरुषोंके अतिरिक्त स्त्रियां भी इसके द्वारा सब रोगोंपर लाभ उठा सकती हैं । की० २) रु० डाकखर्च अलग । सेवनविधि दवाके साथ भेजी जाती है ।